वर्तमान संगीत शिक्षण में परिवर्तन : एक आवश्यकता

गीता गुप्ता

शोधार्थी, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संगीत की शिक्षा प्रणाली अति प्राचीन है। संगीत शिक्षा के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करें तो ज्ञात होगा कि वैदिक काल से ही वैदिक तथा लौकिक संगीत की धाराओं के रूप में प्रवाहित संगीत शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से परिपुष्ट होता है। ऋषियों द्वारा अपने पुत्रों तथा शिष्यों को दी गई साम-गान की शिक्षा के रूप में ही संगीत की शिक्षण प्रक्रिया पल्लवित होती रही।[1] इसी शृंखला में संगीत की शिक्षण प्रक्रिया घरानेदार व गुरु शिष्य परम्परा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संगीत शिक्षण प्रणाली गुरु शिष्य परम्परा व घरानेदार तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि संगीत शिक्षण प्रणाली बदलते सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश से ताल मिलाते हुए व समय के अथाह सागर से गुजरते हुई आज इस अवस्था में वैज्ञानिकता के आभूषणों से सजी सँवरी है। संगीत शिक्षा रूपी गाड़ी के दो महत्त्वपूर्ण चक्र है। शिक्षक व विद्यार्थी अर्थात् गुरु व शिष्य जिनके अस्तित्त्व से ही शैक्षणिक प्रक्रिया सम्पन्न होती है। शिक्षक व विद्यार्थी का सम्बन्ध कलाकार और उसकी कृति जैसा होता है। परिवर्तन संसार का नियम है अर्थात् किसी भी विधा में होने वाले परिवर्तन ही उसे विकसित अवस्था प्रदान करता है। संगीत सदैव परिवर्तनशील रहा है, यह सदैव जनरुचि पर अवलम्बित रहा है इसलिए मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य धीरे-धीरे जनरंजन और मनोरंजन की ओर बढ़ा और इसी उद्देश्य को लेकर संगीत संस्थाओं की स्थापना एक उत्कृष्ट उद्देश्य घरानेदार संगीत परम्परा को लेकर की गई। अत: संगीत महाविद्यालयों तथा विश्व विद्यालयों के प्रांगण से होते हुए सामान्य जन-समूहों के बीच प्रतिष्ठित हो गया। आज जिस प्रकार संगीत सर्वसुलभ हुआ है उसका मूल कारण संगीत की सामूहिक शिक्षा है। जिसकी शुरुआत सर्वप्रथम 1880 के लगभग जामनगर के पंडित आदित्यराम, बड़ौदा के श्री मौलाबख्श और कलकत्ता के श्री सुरेन्द्र मोहन टैगोर के प्रयासों के फलस्वरूप हो चुकी थी। लेकिन विद्यालय, विश्वविद्यालय और संगीत के विभिन्न संस्थाओं में संगीत का वास्तविक सूत्रपात आज से लगभग 60-70 वर्ष पूर्व पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर व पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे इन द्वय विष्णुओं के द्वारा किया गया। जिन्होंने अपने अथक प्रयासों एवं अनवरत चेष्टाओं द्वारा संगीत को अन्य विषयों की भाँति शिक्षण संस्थाओं में एक विषय का दर्जा दिलवाया साथ ही साथ संगीत कला के उत्थान, प्रचार एवं संगीत को समाज में सम्मान दिलाने की अभिलाषा लेकर संगीत विद्यालय की स्थापना की,और संगीत की सामूहिक शिक्षा देना प्रारम्भ किया उस समय यह बड़ा ही साहसी कदम था। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन पर्यत्न कार्यरत रहकर संगीत विद्यालयों में निस्वार्थ शिक्षा देकर जनमानस में संगीत शिक्षा के प्रति रुचि जागृत की। विष्णुद्वय का एक ही उद्देश्य था, प्राचीन घरानेदार संगीत की धरोहर को जन जन के समक्ष लाकर संगीत शिक्षण को सुलभ कराना।[2]

आज संगीत शिक्षार्थियों का एक विशाल वर्ग संगीत के प्रति आकर्षित हुआ है। हर समुदाय, जाति और वर्ग के विद्यार्थी को संगीत की शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला है। आज सम्पूर्ण विश्व के विश्वविद्यालयों में संगीत विषय पर अध्ययन व अध्यापन होने के साथ ही साथ शोध कार्य भी हो रहे हैं। संगीत से सम्बन्धित अनेक विषयों पर पर्याप्त मात्रा में संगीत की पुस्तकें एवं अनेक जनरल,पत्र-पत्रिकाएँ भी उपलब्ध हैं।[3] आकाशवाणी, दूरदर्शन, समारोहों व संगोष्ठी के माध्यम से आज की संगीत शिक्षा को घराना परंपरा से बाहर निकालकर विद्यालयों व महाविद्यालयों तक स्थान प्राप्त हुआ इसमें सन्देह नहीं कि आज संगीत में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध है। जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं। परन्तु संगीत शिक्षा का सबसे बड़ा नकारात्मक पक्ष यह भी है कि आज के संगीत के स्तर में गिरावट आई है। संगीत आज क्रियात्मक के स्थान पर पुस्तकीय हुआ है। जिसका एक मात्र उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करना है।[4] अन्य विषयों की भाँति इसमें भी पाठ्यक्रम निर्धारित हुआ, जिसे निश्चित समयावधि में समाप्त कराया जाता है। संगीत कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है। कई स्थानों पर संगीत की कक्षा में 30-40 विद्यार्थियों की संख्या है और समयावधि वहीं 45 मिनट। कभी-कभी तो यह भी देखने को मिलता है कि विद्यार्थी जिस विषय में रुचि रखते हैं। उस विषय में सीट अनुपलब्ध हो जाने के कारण उन्हें उन विषयों को लेना पड़ता है, जिसमें उनकी कोई रुचि नहीं होती। इस प्रकार उनके पास और कोई ऑप्शन नहीं होता। संगीत में उच्च शिक्षा प्राप्त कर अधिकांश विद्यार्थियों के पास संगीत शिक्षण के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं बचता, क्योंकि एक सफल कलाकार व शिक्षक बनने के लिए संगीत की उच्च शिक्षा ही नहीं कई अन्य तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। जैसे- की बोर्ड व ताल वाद्यों का प्रशिक्षण, स्वरों का ज्ञान आदि। आज विद्यार्थी संगीत में उच्चशिक्षण तो प्राप्त कर रहे हैं परन्तु फिर भी वे संगीत के मूल तत्त्वों से अनभिज्ञ रहते हैं।[5]

परन्तु वर्तमान संगीत शिक्षण का यदि मूल्यांकन करें तो प्रतीत होता है कि हम लक्ष्य से भटक रहे हैं, संगीत का प्रसार तो है परंतु उसकी विशिष्टता एवं पात्रता में कमी आ रही है। संगीत शिक्षण में पाठ्यक्रम को समाप्त कर परीक्षा प्रणाली से निकलकर अच्छे अंक हासिल कर डिग्री लेना ही रह गया है। संगीत का आधार अभ्यास व रियाज़ है, जिसमें स्वर की साधना, कंठ संस्कार विशेष है। जिसका स्थान पाठ्यक्रम में नहीं है और जो प्राथमिक स्तर से ही संगीत शिक्षा के लिए आवश्यक है। उच्च शिक्षा तक के स्तर को ऊँचा उठाने हेतु प्राथमिक व माध्यमिक स्तर से ही संगीत शिक्षण पद्धति में सुधार लाना आवश्यक है। जो इस प्रकार है—

1. वर्तमान संगीत शिक्षण में विद्यार्थी को स्वरों व श्रुतियों का ज्ञान कराना है। उदाहरण स्वरूप- रागदरबारी का गंधार व कान्हडे का गंधार शिक्षक द्वारा जब तक नहीं बताया जाएगा, विद्यार्थी को तब तक संगीत का मर्म समझ नहीं आ सकता है। अर्थात् मात्र पाठ्यक्रम पूर्ण कर अपने कर्तव्य की इतिश्री न समझी जाये, उसे आत्मसात करने का प्रयास हो।
2. गुरु शिष्य के बीच आपसी समझ, प्रेम व मर्यादा के अभाव को दूर करना है। ऐसा कहा जाता है कि शिक्षक ही विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण करते हैं। उसे सही व गलत का पहचान करवाते हैं।
3. वर्तमान संगीत शिक्षण में परिवर्तन कर विद्यार्थियों में स्वर साधना के गिरते हुए स्तर को ऊपर उठाना है। वर्तमान समय इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का युग है। संगीत शिक्षणों के क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों ने अपना परचम लहराया है, जिसके कारण वास्तविक तानपुरा जिन्हें स्वर में मिलाने में समय अधिक लगता है, जिसके कारण वाद्यों को मिलाने का वास्तविक ज्ञान होता था, जो अब नहीं हो पा रहा है। अत: इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के प्रयोग के साथ-साथ वास्तविक ज्ञान को भी बढ़ावा देना चाहिए।
4. छात्र व छात्राओं में संगीत के प्रति अभिरुचि एवं विषय को समझने की योग्यता को विकसित करने के साथ ही साथ विद्यार्थी को सामान्य से विशेष की ओर व विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर करते हुए विद्यार्थी को योग्य शिक्षक बनाने का बढावा देना चाहिए।
5. संगीत शिक्षण मात्र को व्यावसायिक रूप के साथ-साथ कला की महत्ता को भी बढावा देना चाहिए। संगीत शिक्षण के पाठ्यक्रमों में विद्यालय स्तर से ही बदलाव लाना चाहिए। उदाहरण स्वरूप- कक्षा 9,10 एवं 11,12 में पाँच-पाँच रागों को रखना चाहिए, उसके पश्चात् महाविद्यालयों स्तर पर दस-दस रागों को रखना चाहिए। जिससे विद्यार्थी रागों के स्वरूप, लगाव को भली-भाँति समझ सके। इसके साथ ही शिक्षकों को पाठ्यक्रम को पूरा कराने के लिए पर्याप्त समय भी मिलेगा। साथ ही साथ महीने के अंतिम सप्ताह में विद्यार्थियों का मंच प्रदर्शन होना चाहिए। जिससे विद्यार्थी अपनी योग्यता, कुशलता व कल्पनाशक्ति के माध्यम से संगीत को अधिकाधिक प्रभाव पूर्ण एवं रुचिपूर्ण बना सके।
6. आज महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में ख्याल गायकी को ही सिखाया जा रहा है। ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पा, त्रिवट, चतुरंग आदि गायन शैलियों को सिखाने पर अधिक जोर नहीं दिया जा रहा है। पाठ्यक्रमों में अत्यधिक रागों का होना व समय की कमी, जिसके कारण शिक्षक व विद्यार्थियों का पूरा ध्यान पाठ्यक्रम को पूरा करने में लगा होता है, जिसके कारण कुछ गायन शैलियाँ लुप्त हो रही है। अत:ख्याल गायकी के साथ-साथ इन शैलियों को भी महत्त्व दिया जाना चाहिए। वरना ध्रुपद, धमार, टप्पा गायन शैलियाँ त्रिवट व चतुरंग गायन शैलियों के समान ही लुप्त न हो जाए। अत: हम सभी को वर्तमान संगीत शिक्षण में परिवर्तन कर शास्त्रीय संगीत की परंपरा की धरोहर को एक पीढी से दूसरे पीढ़ी तक पहुँचाना है और अधिक सुदृढ़ बनाते हुए संगीत को एक नई दिशा प्रदान करना है।

पाद टिप्पणियाँ

1. सक्सेना, मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, हरियाणा साहित्य एकेडमी चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 1990, पृ. 5-6
2. ऋषितोष कुमार, संगीत शिक्षण के विविध आयाम, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृ. 5-6
3. शर्मा, महारानी, संगीत मणि भाग-2, श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2012, पृ. 94
4. पलनीटकर, अलकनन्दा, शास्त्रीय संगीत शिक्षा सम्स्याएँ व समाधान, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2006, पृ. 100-101
5. Op.cit शर्मा महारानी, पृ. 94
6. चौधरी, सुभद्रा, संगीत संचयन, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर प्रथम संस्करण 1989, पृ. 15
7. मिश्र, विजय शंकर, भारतीय संगीत के नये आयाम, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 243
8. Op.cit पलनीटकर, अलकनन्दा, पृ. 100-101
9. शोधार्थी के साक्षात् अनुभव के आधार पर